कर्म सिद्धांतः दार्शनिक मूल्य एवं नैतिक अधिष्ठान

कुमार मण्डल
शोध छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

भारतीय दर्शन में कर्मवाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो मानव जीवन, नैतिकता, उत्तरदायित्व तथा पुनर्जन्म की अवधारणाओं का आधार माना जाता है। कर्मवाद के अनुसार प्रत्येक कर्म का निश्चित फल होता है तथा व्यक्ति अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है। अनेक आधुनिक चिन्तकों ने कर्मवाद को भाग्यवाद का समर्थक माना है, क्योंकि इसके अनुसार वर्तमान जीवन की अनेक परिस्थितियाँ पूर्वकृत कर्मों का परिणाम होती हैं। किन्तु भारतीय दार्शनिक परम्परा में कर्मवाद को केवल भाग्यवाद के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे पुरुषार्थ, आत्मप्रयत्न तथा नैतिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के रूप में व्याख्यायित किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में कर्मवाद, भाग्यवाद तथा नैतिक स्वतन्त्रता के पारस्परिक सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है तथा यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि कर्मवाद मूलतः नैतिक उत्तरदायित्व एवं मानवीय स्वतन्त्रता का दर्शन है।

मुख्य शब्दः कर्मवाद, भाग्यवाद, नैतिक स्वतन्त्रता, पुरुषार्थ, कर्मफल, नैतिक उत्तरदायित्व।

प्रस्तावना

भारतीय जीवन-दर्शन और संस्कृति के मूल में जो अवधारणा सबसे अधिक सशक्त रूप से विद्यमान है, वह है कर्मवाद। ऋग्वेद के "ऋत" सिद्धांत से विकसित होकर कर्मवाद उपनिषदों, पुराणों तथा बाद में आस्तिक दर्शन-परंपराओं का अभिन्न अंग बन गया है। कर्म सिद्धांत केवल एक पारलौकिक विश्वास नहीं है, बल्कि यह समस्त ब्रह्मांड का एक अटल नैतिक नियम है, जो कारण-कार्य संबंध पर आधारित है। दार्शनिक दृष्टि से कर्मवाद मानव अस्तित्व की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करता है। संसार में असमानता क्यों है, कोई व्यक्ति सुखी और कोई दुःखी क्यों है - इन जटिल प्रश्नों का उत्तर कर्म सिद्धांत प्रदान करता है। यह पुरुषार्थ या व्यक्तिगत प्रयास को महत्त्व देता है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार है और अपने कर्मों के द्वारा वह अपने भविष्य को बदल सकता है।

कर्मवाद भारतीय नीतिशास्त्र की आधारशिला है। यह नैतिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य बोध की भावना को प्रोत्साहित करता है। यदि प्रत्येक क्रिया का समान और विपरीत फल होता है, तो मनुष्य बुरे कर्मों से विरत होने और अच्छे कर्मों में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित होता है। पांडव-गीता का वह प्रसिद्ध कथन "जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः"[1] मानव की कमजोरियों और कर्म की गति के बीच के द्वंद्व को उजागर करता है। कर्मफल ही मनुष्य को शुभ और अशुभ का विवेक सिखाता है तथा एक सुव्यवस्थित समाज के निर्माण में

Published: 27 June 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i6.45809
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

[1] पांडव गीता, श्लोक 57

नैतिक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के युग में कर्मवाद को कई बार अदृष्टवाद या भाग्यवाद का समर्थक माना जाता है। लेकिन क्या कर्मवाद वास्तव में भाग्यवाद है या स्वतंत्रता का उद्घोष? इस शोध में कर्मवाद के इसी दार्शनिक मूल्य और नैतिक संरचना की अवधारणा का विश्लेषण किया जाएगा। विशेष रूप से पुनर्जन्म और नैतिक उत्तरदायित्व के संदर्भ में यह निष्कर्ष कितना युक्तिसंगत है, इसका अन्वेषण करना ही इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

कर्म की अवधारणा

'कर्म' शब्द संस्कृत धातु 'कृ' से बना है, जिसका अर्थ है—करना, क्रिया करना अथवा कार्य सम्पन्न करना। सामान्य अर्थ में कर्म किसी भी प्रकार की क्रिया को कहते हैं, किन्तु दार्शनिक अर्थ में कर्म वह सचेतन एवं उद्देश्यपूर्ण कार्य है जो फल उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। भगवद्गीता में कर्म को मानव जीवन का अनिवार्य तत्व माना गया है –

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।"[2]

अर्थात कोई भी व्यक्ति एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। गीता में भगवान श्री कृष्णा ने कहा है –

"वहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।"[3]

हे अर्जुन तुम्हारे और मेरे भी अनेक जन्म हो चुके हैं। गीता के इस कथन से स्पष्ट होता है की यह जन्म मनुष्य का पहला जन्म नहीं है, बल्कि हम सभी के अनेक -अनेक जन्म हो चुके हैं। उन सभी पूर्व जन्म में भी हमने विभिन्न प्रकार के कर्म किए हैं। कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है – चाहे यह कर्म शुभ हो या अशुभ। भोग के बिना उनका क्षय नहीं होता। ईश्वर प्रत्येक जीव के कर्म के अनुसार फल का विधान करता है। भारतीय दर्शन की मुख्य शाखाओं में से न्याय-वैशेषिक, वेदांत और सांख्यदर्शन इस विचारधारा को स्वीकार करता है। भगवद्गीता में भी कर्म के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है—

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।"[4]

अर्थात मनुष्य को अपने कर्तव्यकर्म का पालन करना चाहिए, क्योंकि कर्म अकर्म से श्रेष्ठ है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में कर्म को जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है।

कर्म की प्रकार भेद

पुराण में कर्म को तीन भागो में बंटा गया है – 1. प्रारब्ध कर्म 2. संचित कर्म 3. क्रियमाण कर्म। इस संदर्भ को देवी भागवत पुराण में ऐसें कहा गया –

"कर्मण्यस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः।

संचितं वर्तमानं च तामसं त्रिविधं पुनः।।"[5]

[2] गीता 3/5

[3] गीता 4/5

[4] गीता 3/8

[5] देवी भागवत 6/10/8

अर्थात् तत्त्ववेत्त्वाओं में श्रेष्ट विद्वानों ने कर्म की गति को तीन प्रकार भेद बताया - संचित, वर्तमान और तामस।

1. प्रारब्ध कर्म

जो कर्म फल देने के लिए आरंभ हो चुके हैं, उन्हें उनकी फल का अनुभव किए बिना त्यागा नहीं जा सकता। मनुष्य के वर्तमान जीवन की शारीरिक और मानसिक अवस्थाएं उन्हीं कर्मों का परिणाम है, जो पहले से ही फलित हो रहा है। यही कर्म व्यक्ति के भाग्य का निर्धारण करता है अर्थात् इसी कर्मों के द्वारा ही मानव जीवन के सुख के स्तर और दुखों की परिणाम का भी निर्धारण होता है। देवी भागवत में ऐसा कहा गया

"प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयं स्मृतः।

प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः।।"[6]

2. संचित कर्म

यह एक संचित भंडार की तरह ही काम करता है। यहां पूर्व जन्म की संचित शुभ और अशुभ कर्मों का ही संचय होता है जो कर्मों अभी तक फलित नहीं हुआ है। यथार्थ तत्त्व ज्ञान के माध्यम से इन संचित कर्मों का क्षय होने पर ही जन्म-मृत्यु के इस अन्तहीन चक्र से मुक्ति लाभ संभव होता है। संचित कर्म को मुख्य रूप से शुभ या अशुभ इन दो भागों में विभाजित किया गया है। अतः यह स्पष्ट हे कि मनुष्य अपने वर्तमान शारीरिक और मानसिक अवस्था के लिए स्वयं उत्तरदायी है। इस घटना को आकस्मिक नही कहा जा सकता, क्योंकि यह पूर्वजन्म में किया गया संचित कर्म का एक भाग है जो वर्तमान काल में सक्रिय रूप में प्रकट हुआ है।

3. क्रियमाण कर्म

प्राणियों के द्वारा इस जीवन और वर्तमान काल में किया जाने वाला कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते है। भविष्य में ही इस कर्म का फल मिलता है। यह सिद्धांत मूलतः नैतिक कार्य - कारण वाद पर आधारित है, जिसका मुख्य सार यह है कि प्रत्येक कर्म के पीछे एक निश्चित फल या प्रतिक्रिया होती है। इस शाश्वत सत्य को स्वीकार करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है –

"अवश्यमेव भोक्त्व्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।"[7]

अर्थात् शुभ या अशुभ जो भी कर्म किया जाए, उसका फल भोगना अनिवार्य होता है; सो करोड़ कल्प बीत जाने पर भी कर्मफल भोगे बिना नष्ट नहीं होता।

कार्य-कारण सम्बंध

कर्म और पुनर्जन्म के बीच कारण-कार्य संबंध है। भारतीय दर्शन में कारण-कार्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धांत सत्कार्यवाद है, जो सांख्य दर्शन का एक प्रमुख सिद्धांत है। सांख्य कारिका में ईश्वरकृष्ण इसका प्रतिपादन किया है–

"शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।"[8]

[6] देवी भागवत 6/10/14

[7] ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्म खंड, उत्तरार्ध, अध्याय 84

अर्थात् कारण में कार्य की शक्ति निहित रहती है और कार्य तथा कारण सदैव अभिन्न होते हैं। कारण के बिना क्रिया की उत्पत्ति संभव नहीं है। कर्म और पुनर्जन्म के बीच कर्म 'कारणस्वरूप' है और उसका फल ही 'कार्य' है। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने कर्म और पुनर्जन्म के बीच इस कार्य-कारण को समझाने के लिए सूत्र प्रतिपादित किया है-

" क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।"[9]

अर्थात् अविद्या आदि क्लेश से उत्पन्न संस्कारों इस जन्म में अथवा परलोक में फल प्रदान करता है। क्योंकि कारण नष्ट नही होता, इसलिए कर्म की ये आशय या संस्कार अगले जन्म के लिए बीज का काम करते हैं।

कर्मवाद और नैतिक स्वतन्त्रता

कर्मवाद की आलोचना करने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि यदि वर्तमान जीवन पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम है, तो मनुष्य की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। किन्तु यह आलोचना कर्मवाद की अपूर्ण समझ पर आधारित है। कर्म जगत में मनुष्य निरंतर कर्म करता रहता है, परन्तु कर्म के फल की आकांक्षा उन्हें बंधन में बांध देती है। इसीलिए भगवान कृष्ण ने गीता में निष्काम कर्म का उपदेश दिया है-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"[10]

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करने का अधिकार है। लेकिन अपने कर्मों के परिणामों की इच्छा रखना ही पुनः कर्म के बंधन में बंध जाना है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का अंतहीन चक्र चलता रहता है। किन्तु गीता में भगवान यह भी कहते हैं कि आसक्ति से मुक्त होकर और इच्छा रहित कर्म करके ही इस यात्रा से मुक्ति संभव है।

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥"[11]

यहाँ मनुष्य को कर्म करने का अधिकार दिया गया है। यदि कर्मवाद पूर्ण भाग्यवाद होता, तो कर्म करने की स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार गीता में कहा गया है—

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।"[12]

अर्थात मनुष्य स्वयं अपने उत्थान और पतन का कारण है। यह कथन स्पष्ट रूप से आत्मप्रयत्न तथा नैतिक स्वतंत्रता का समर्थन करता है। इसलिए भारतीय दर्शन कर्मवाद को भाग्यवाद के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक स्वतन्त्रता के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कर्मवाद मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है।

कर्मवाद और नैतिकता का संबंध

कर्म और नैतिकता के बीच से गहरा और अटूट संबंध है। नैतिक व्यवहार और जिम्मेदारी एवं आत्म-नियंत्रण की

[8] सांख्य कारिका 9

[9] योग सूत्र 2/12

[10] श्रीमद्भागवत गीता 2/47

[11] श्रीमद्भागवत गीता 3/19

[12] श्रीमद्भागवत गीता 6/5

भावना विकसित करने के लिए कर्मवाद एक महत्वपूर्ण आधार का काम करता है। क्योंकि हमारे नैतिक जीवन में किए गए अच्छे कर्म कई स्थितियों में इस जीवन में फल नहीं देते हैं। यदि पाप का परिणाम दुःख ही है, तो पापी समृद्ध क्यों होता है? समाज में बुरे चरित्र वाले व्यक्ति का धनी होना कोई असामान्य बात नहीं है। इसके विपरीत, एक गुणी और ईमानदार व्यक्ति आर्थिक कष्टों में जीवन व्यतीत करता है। कर्म वाद की सत्यता के संबंध में तब हमारे मन में संशय उत्पन्न होता है। और इसीलिए परलोक की आवश्यकता है। शरीर भले ही मर जाए, आत्मा जीवित रहती है। पुनर्जन्म होता है और अगले जन्म में मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगेंगे। लेकिन किस आधार पर और किसके आश्वासन पर लोग नैतिक जीवन जिएंगे? यदि हमें अपने कर्मों का उचित फल नहीं मिलेगा, तो हमें नैतिक व्यवहार क्यों करना चाहिए? इस समस्या के समाधान में भारतीय दर्शन में ईश्वर की महत्वपूर्ण भूमिका है। ईश्वर समस्त प्राणियों के नियामक हैं।[13] ईश्वर ही नैतिक आदर्शों का स्रोत है। जन्म-जन्मांतर के कर्मों का हिसाब स्वयं ईश्वर ही रखता है। वही न्याय और अन्याय के तराजू के अनुसार लोगों को पुरस्कार और दंड देता है।

यद्यपि भारतीय दर्शन ज्ञान को मुक्ति का साधन मानता है, फिर भी यह नैतिक कर्म-विमुखता दर्शन नहीं है। मानव के कर्तव्य तथा अकर्तव्य, न्याय और अन्याय के संबंध में भारतीय दर्शन में व्यापक चर्चाएँ मिलती है। बौद्ध और जैन दर्शन मनुष्य के शुद्ध आचरण और व्यवहार पर विशेष जोर देते है। वहाँ आध्यात्मिक खोज को गौण स्थान दिया गया है। यद्यपि उपनिषद ज्ञान के मार्ग को प्राथमिकता देते हैं, यह भी स्वीकार करते हैं कि शुद्ध जीवनशैली के बिना सत्य ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है। योग दर्शन में भी यम और नियम को आत्म-संयम के साधन के रूप में दर्शाया गया है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के साधन पाद में यमों को 'महाव्रत' कहा है।

"जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्॥"[14]

उनके अनुसार, ये नैतिक नियम जाति, देश, काल और समय की सीमाओं से परे (अनवच्छिन्न) हैं। यह सिद्ध करता है कि भारतीय दर्शन में नैतिक उत्तरदायित्व (Ethical Responsibility) सार्वभौमिक है।

अतः कर्म सिद्धान्त न केबल व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी को स्पष्ट करता है, बल्कि उसे सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन में भी मार्ग दर्शन करता है। इसलिए भारतीय दार्शनिक परम्परा में कर्म को जीवन की नींव माना गया है।

निष्कर्ष

अंततः यह बात निर्विवाद है कि मंगल-साधना ही मनुष्य के समस्त कर्मों का परम और अंतिम लक्ष्य है। अधर्म पूर्ण जीवन में हमारा यह धर्माश्रित नैतिक संघर्ष अधिकांशतः दब जाता है। धार्मिक जीवन का मुख्य उद्देश्य भगवान के प्रति आत्मसमर्पण है। इस संदर्भ में दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा था-

"त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।"[15]

अर्थात् मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, पर उसमें मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं है; और मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, फिर भी उससे अपने को दूर रखने की शक्ति मुझमें नहीं है। हे अंतर्यामी श्रीकृष्ण! आप मेरे हृदय में स्थित होकर मुझे जैसे प्रेरित करते हैं, मैं वैसे ही कर्म करता हूँ। इस तर्क के अनुसार यदि ईश्वर ही हृदय में स्थित होकर सब कुछ कराते हैं, तो मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों की जिम्मेदारी किसकी होगी? इसलिए "ईश्वर में विश्वास करना ही धर्म है,

[13] श्रीमद्भागवत गीता 18/61

[14] योग सूत्र 2/31

[15] पांडव गीता, श्लोक 57

और धर्म में ही मनुष्य की समस्त नैतिक उन्नति का समापन होता है।"[16]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा चंद्रधर, भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. गोस्वामी नारायण चन्द्र, सांख्यतत्त्वकौमुदी, संस्कृतः पुस्तकभाण्डार, कोलकाता।
3. पातंजल दर्शन, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2019.
4. श्रीमद्भागवत गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. सेनगुप्त श्रीप्रमोदवन्धु, नीति विज्ञान ओ भारतीय दर्शन, व्यानार्जी पावलिशार्स, कोलकाता।
6. नन्दी सुधीर कुमार, नीति विद्या, व्यानार्जी पावलिशार्स, कोलकाता।
7. ब्रह्मवैवर्तपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. श्रीमद् देवी भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।

[16] नीति विद्या पृ. 34